बच्चे स्कूल से जी क्यों चुराते हैं ?

चंद्र प्रकाश कड़ा

मुल्क में दूर दराज़ के इलाके हों या ठेठ महानगर, शायद ही कोई ऐसी जगह होगी जहा बच्चे स्कूल जाने में आना-कानी न करते हों। प्रतिदिन इसी आनाकानी पर सैकड़ों बच्चे अपने अभिभावकों से बुरी तरह पिटते हैं, डांट खाते हैं और बहुत से दयनीय हालत में स्कूल की दलहीज़ तक लाए जाते हैं। अधिकांश अभिभावक इन घटनाओं को यह सोचकर अनदेखा कर देते हैं कि बच्चे तो इस उम्र में स्कूल जाने के लिए मनाही करते ही हैं क्योंकि उन्हें पढ़ने से ज़्यादा खेलना अच्छा लगता है।

लेकिन सोचने और महसूस करने वाली बात यह है कि बच्चे स्कूल जाना क्यों पसंद नहीं करते। बच्चे स्कूल से क्यों जी चुराते हैं? कहीं स्कूल की कक्षाओं में व्याप्त भय इसका मूल कारण तो नहीं। या मौजूदा सामग्री से खिसियाहट है, जिसमें ज़रा-सी भी दखलअंदाज़ी शिक्षक की नाराज़गी का कारण बन सकती है। क्या स्कूलों का माहौल ऐसा नहीं है जो बच्चों को भा जाए, क्या स्कूल जैसा ही कोई ऐसा वैकल्पिक स्थान हो सकता है जहां बच्चे आज़ादी से आ-जा सकें, आज़ादी से पढ़ सकें, कुछ सीख सकें?

मध्यप्रदेश में टीकमगढ़ में स्थित बाल-साहित्य केन्द्र के साथ काम करते हुए जो अनुभव मिले उनसे इस सवाल के कुछ जवाब तो मिलते दिखते हैं। इसी संदर्भ में स्कूल के नाम से रोने लगने वाले एक बच्चे के बारे में अपने कुछ अनुभव मैं आपके साथ बांटना चाहता हूं।

हमारे बाल-साहित्य केन्द्र में एक लड़का सुब्रत आया था जिसे किताबों से बहुत घृणा थी। उसकी मां एक प्राथमिक विद्यालय की शिक्षिका थी,

और पिता दुकानदार। जिस समय सुब्रत केन्द्र में आया, उस की उम्र सात साल थी। उससे पहले तीन वर्षों के दौरान कितने ही स्कूलों में सुब्रत को ले जाया गया, लेकिन पढ़ना तो दूर की बात, वह बैठने तक को राज़ी नहीं होता था। पिता हताश हो गए पर मां हमेशा इसी उधेड़बुन में लगी रहती कि आखिर सुब्रत को कैसा स्कूल पसंद होगा? उसे अपने साथ स्कूल ले जाती तो सुब्रत चीख-चीखकर आसमान हिला देता। कक्षा का सारा सामान उलट-पुलट देता, जिसकी वजह से कई बार उसकी मां को अपमानित भी होना पड़ा। इससे गुस्से में आकर उसे पीट भी देती पर बाद में बहुत दुखी भी होती। सुब्रत से जब पूछा जाता कि, "तुम क्यों इतना तंग करते हो?" तब रोते बिलखते हुए बस एक ही जवाब देता, "मम्मी हमें स्कूल नहीं जाना, हमें तो बस घर ले चलो।"

कई शिक्षकों ने उसे बहुत समझाया, रंग-बिरंगे खिलौने खेलने को दिए और कइयों ने उसे ज़बरदस्ती बिठाए रखने का प्रयास भी किया। पर उसकी जिद के आगे सभी थककर चुपचाप बैठ गए; लेकिन सुब्रत की मां अभी भी पूरी तरह निराश नहीं हुई थी।

सुब्रत के स्वभाव, उसकी आदतों को समझने के उपरान्त मुझे यह अहसास हो चला था कि सुब्रत को एक ऐसे माहौल की आवश्यकता थी जो स्कूली रवैये से कुछ हट कर हो। प्रेम, सम्मान, स्वतंत्रता एवं अपनत्व के बलबूते पर उसके भीतर जगह बनाई जा सकती थी। उसकी रुचियों को ध्यान में रखकर अगर काम किया जाए तो वह ज़रूर स्कूल आना चाहेगा। पर शुरुआत कैसे की जाए, यह सोच का विषय था।

केन्द्र में पढ़ने वाले बच्चों से यह रहस्य छुपा नहीं था। सबको पता था कि एक नया लड़का सुब्रत पढ़ने आएगा। अक्सर उनकी आपसी बातचीत का विषय सुब्रत हुआ ही करता था।

आज सुब्रत को आना था। इसलिए सभी बच्चे और बड़े भी, सुब्रत की बाट जोह रहे थे। कोई सुब्रत के लिए मिट्टी के खिलौने पर रंग कर रहा था तो कोई चित्रकारी करने में मग्न था। एक बच्ची गरिमा ने तो उस पर एक पूरी कविता ही लिख ली थी। सुब्रत क्या पहनकर आएगा बच्चों के बीच यह एक चर्चा का विषय बना हुआ था। लेकिन जब सुब्रत आया तो न तो वह ड्रेस पहने था और न ही वज़नी बस्ता टांगे था। अपनी मां का कसकर आंचल पकड़े हुए ज़मीन पर गुस्से से हाथ-पैर पटक रहा था। आंचल को एक पल के लिए भी अपनी पकड़

से ढीला नहीं होने दे रहा था। सारे बच्चे उसके इर्द-गिर्द जमा हो गए तो सुब्रत दुबक कर अपनी मां के पीछे खड़ा हो गया। सहमी-सहमी, पर पूरी तरह चौकन्नी नज़रों से वो बच्चों को देख रहा था।

बच्चों ने खुद के बनाए उपहारों को उसे देना चाहा, पर उसने किसी भी चीज़ को छुआ तक नहीं। उसकी मां ने कहा, "घबराओ नहीं। यह कोई स्कूल नहीं है जो तुम इतना डर रहे हो, यहां तो बच्चे खेलने और अच्छे-अच्छे काम करने आते हैं। देखो वह कितने अच्छे खिलौने बना रहा है, तुम भी बनाओगे?"

उसने बेमन से कहा, "नहीं हमें तो घर ले चलो।" बहुत मुश्किल से वह हम लोगों के साथ अलग-अलग कमरों में गया, जहां बच्चे अपनी रुचि के कार्यों में मग्न थे।

एक कमरे में छोटी उम्र के बच्चे ब्लॉक्स से खेल रहे थे। कोई घर बनाकर उसके सामने बगीचा बनाने की कोशिश करता और जब ब्लॉक्स बिखर जाते तो बुदबुदा कर फिर से जोड़ने की कोशिश करता। पुनीत ने एक गोल घेरे में ब्लॉक्स जमाए और कहने लगा, "देखो हमारा कुआं कितना गहरा है।" शहबाज़ और रूपा मिट्टी के खिलौनों की धूल साफ करके अलमारी में सजा रहे थे। इन्हें केन्द्र में आए कुछ ही समय हुआ था, पर पूरी तरह से मग्न और निश्चिंत होकर अपने काम में लगे हुए थे।

पास के कमरे में कुछ बच्चे तरह-तरह की पत्तियों को उनके गुणधर्म के आधार पर छांटकर ढेरियां बना रहे थे, बड़ी पत्तियां, छोटी पत्तियां, किनारे कटे-फटे हों ऐसी पत्तियां और मोटे डंठल वाली पत्तियां आदि, आदि। यह खोजी दल था जो कुछ समय पहले तमाम प्रकार की पत्तियों का संग्रह करके आया था।

एक और टोली बिल्कुल ध्यान मग्न होकर पुस्तकालय कक्ष में डटी हुई थी। कोई पैर फैलाए कहानियों, कविताओं, चित्रों की किताबें पढ़ रहा था तो कोई अपनी पुस्तक का सारांश लिख रहा था। कुछ बच्चे कहानी, कविता लिखने में व्यस्त थे। एक नन्हा बच्चा सौमित्र कभी चित्रों की किताब को उलट-पलट कर देखता तो कभी चित्रों पर अपनी उंगलियों को फेर कर आड़ी-टेढ़ी रेखाओं के बीच भरे रंगों को छूने का प्रयास करता।

केन्द्र के बच्चों की प्रतिक्रियाएं और उनके क्रियाकलापों ने सुब्रत की मां के हृदय में एक विश्वास जगा दिया था। उन्हें महसूस होने लगा था कि सुब्रत यहां ज़रूर रुकना चाहेगा क्योंकि सुब्रत की नज़र कभी इन बच्चों पर आकर ठहर जाती थी, तो कभी उन दीवारों पर लटके पैनल्स पर, जहां बच्चों ने अपनी मंशा से स्वयं के चित्रों, रचनाओं

एवं चीज़ों को प्रदर्शित किया था। मां के साथ वह भी उस प्रदर्शित सामग्री को बहुत करीब जाकर देख रहा था। चीज़ों को छूकर उसे शायद काफी मज़ा आ रहा था।

कुछ समय पश्चात दोनों ने अगले दिन मिलने का वायदा किया और चल दिए। हमारे केन्द्र के बच्चों के लिए यह सोच का विषय था कि – क्या सुब्रत कल आएगा?

अगले दिन सुब्रत अपनी मां के साथ उस समय आया जब हम बच्चों की टोली के साथ पास के खेतों में बोई गई फसल का अवलोकन एवं विश्लेषण करने जा रहे थे। खेतों में पहुंचकर वह भी बहुत खुश था। और बच्चों की तो खुशी का ठिकाना नहीं था, क्योंकि अधिकांश बच्चों ने मिट्टी में से फूटते हुए अंकुर पहली बार देखे थे। कोई मिट्टी को खोदकर अंकुर की जड़ तक पहुंचने की कोशिश कर रहा था, तो कोई नन्हें पौधों की पत्तियां गिन रहा था। बच्चों ने अपनी डायरी में रिपोर्ट दर्ज की थी –"एक सप्ताह बाद गेहूं का नन्हा पौधा दिखा, जो अंकुर है। कुछ गेहूं के दाने मिट्टी के ऊपर पड़े थे जो अंकुरित नहीं हुए थे मगर फूलकर मोटे हो गए थे।" कुछ सवाल बच्चों को बहुत तंग कर रहे थे कि इतना नन्हा पौधा मिट्टी की इतनी मोटी पर्त तोड़कर बाहर कैसे निकल आता है? और दूसरा सवाल यह था कि गेहूं के दाने कितने लम्बे समय तक सूखे रहते हैं, पर कोमल अंकुर (पौधा) दानों के अंदर ज़िंदा कैसे बना रहता है?

मैना, गौरैया, नीलकंठ, सत-भैया, हरियल, हुद-हुद, पीलक न मालूम कितने ही पक्षी खेतों के ऊपर मंडरा रहे थे। कभी नीलकंठ और हरियल पक्षी कीड़े -मकोड़ों पर यकायक झपट पड़ते और कीड़े को पकड़कर इत्मीनान से किसी बिजली के तार या सूखी टहनी पर बैठकर, उसे अधमरा करके निगलने की बार-बार कोशिश करते। बच्चों का चेहरा कभी कुलबुलाते कीड़े की तड़फ से दुखी हो जाता, तो कभी चालाक और फुर्तीले हरियल पक्षी के करतब से चुलबुला उठता। बच्चे असमंजस में थे कि इतनी दूर से इस हरियल को इतने बारीक कीड़े कैसे दिख जाते हैं? बच्चे भी कम पड़ताली नहीं थे, उन्होंने कुछ मोटे और फूले गेहूं के दानों को मसलकर देखा, तो दानों में से दूधिया पदार्थ बह निकला। उन्होंने जब उसे चखा तो खुशी से उछलने लगे, "अरे, यह तो मीठा और स्वादिष्ट है। अच्छा, तभी ये पक्षी इन्हें खाने के लिए इतनी उछल कूद कर रहे हैं, देखो कैसे लड़ झगड़ रहे हैं।" सुब्रत के लिए यह बिल्कुल पहला अवसर था जब वह अपने इर्द-गिर्द के संसार तथा उसमें शामिल विभिन्न चीज़ों की विचित्रता से परिचित हो रहा था।

हमेशा की तरह आज भी बच्चों ने कुछ चीज़ों का संग्रह किया, जैसे पंख, चमकीले पत्थर, अंकुरित दाने एवं पत्तियां। सुब्रत जब किसी धूप से चमकते पत्थर को देखता तो दौड़कर उसे उठाने का प्रयास करता, पर नज़दीक पहुंचकर वह विचलित हो जाता था। बच्चे अलग-अलग स्थानों पर खड़े होकर उस पत्थर को ढूंढने में उसकी मदद करते। पर यह बात अभी उनकी समझ में नहीं आ रही थी कि नज़दीक पहुंचते ही पत्थर चमकना क्यों बंद कर देते हैं?

⁂

लगभग एक सप्ताह गुजर चुका था अब तक सुब्रत के कई दोस्त भी बन चुके थे। अब तो वह कुछ देर तक कमरे में चल रही गतिविधि में शामिल हो जाता। और वह चुपके से अपनी मां को आफिस में बैठा देखकर पुनः अपने काम में लग जाता। अब उसे बहुत हद तक यह विश्वास हो चुका था कि उसे यहां रहने में कोई खतरा नहीं है।

वह जब चाहे किसी भी चीज़ को छू सकता है, देख सकता है, किसी से भी बात कर सकता है, जहां मन करे वहां बैठ सकता है, किसी से भी बात कर सकता है। और ताज्जुब की बात तो यह थी कि वह अब लौटते वक्त मां का साथ छोड़ बच्चों के साथ तांगे से घर जाने लगा। अगले दिन बातचीत के समय सब कुछ बताता कि तांगा कहां-कहां होकर उसे घर ले गया। उसने भीड़-भाड़ भरे बाज़ार को देखा, हॉर्न बजाती मोटर गाड़ियों को देखा, भारी गठरीनुमा बस्तों के साथ ड्रेस पहने स्कूल के बच्चों को देखा।

एक दिन कहने लगा, "सर, यहां बच्चे ड्रेस पहन कर क्यों नहीं आते? न ही बच्चे बड़े-बड़े बस्ते लाते हैं?" मैंने कहा, "यह स्कूल नहीं है, इसलिए यहां वह सब नहीं होता जो तुमने रास्ते में देखा।" वह अचरज भरी नज़रों से मुझे कुछ देर तक देखता रहा और यकायक बोला, "सर, यह स्कूल नहीं है तो यहां बहुत सारी किताबें क्यों रखी हैं? इन्हें बाहर फेंक दो।" मुझे ज़रा भी आभास नहीं था कि वह इतना विचित्र प्रश्न करेगा। इसलिए कुछ देर के लिए मैं खुद सोच में पड़ गया कि आखिर कैसे समझाऊं कि ये वे किताबें नहीं हैं जिनको लेकर उसकी खिसियाहट बनी हुई है। मैं कुछ कहता उससे पहले ही वह उकताते हुए बोला, "इन्हें बाहर फेंक दो। हमें किताबें अच्छी नहीं लगती।" मैंने कहा, "किताबों को तुम ही बाहर फेंकोगे, पर हमारी एक शर्त है। जिस किताब को तुम फेंकना चाहोगे, उसे एक बार पूरी खोलकर देखोगे। अगर तुम्हें वाकई पसंद न आए तो ज़रूर फेंक देना।" वह राज़ी हो गया। तब हम दोनों उस

अलमारी के पास गए जिसमें ढेर सारी किताबें रखी हुई थीं। उसने बहुत ही फुर्ती से अलमारी खोली और दो-तीन किताबों को बहुत ही नाराज़ी के साथ उठाया और ज़मीन पर पटक दिया। मैंने कहा, "फेंकने से पहले ज़रा इन्हें खोलकर तो देख लो। शायद अच्छी किताब हो।" वह ज़मीन पर पसरकर किताबों के पेजों को पलटता तो पलटता ही जाता, जब तक कि किताब के सारे पेज न पलट लेता। वह एक के बाद एक पुस्तक उलट-पलट कर देखता रहा, पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर किसे बाहर फेंकूं।

सुन्दर चित्रों, सहज शब्दावली में लिखी छोटी-छोटी कहानियां, कविताओं की आकर्षक किताबों ने उसके मन को उद्वेलित कर दिया। किसे फेंके, किसे रखे यह उसकी चिंता का विषय बन चुका था। वह बीच-बीच में से दो-तीन किताबें निकालकर देखने लगा, जैसे वर्षों से पनप रही अरुचिकर धारणा को मिटाना चाह रहा हो? लेकिन वे भी पसंद आने वाली किताबें ही निकली। मैंने कहा क्या बात है? किताबें बाहर नहीं फेंकनी हैं। तब वह लड़ियाते हुए बोला, "नहीं, हम इन्हें घर ले जाएंगे।" और उसने आठ-दस किताबें उठा लीं। मैंने भी मज़े लेते हुए उससे पूछा, "घर ले जाकर इन्हें फाड़ोगे क्या?" वह बोला, "नहीं मम्मी को दिखाएंगे।" मैंने कहा, "ज़रूर ले जाओ, पर संभालकर रखना और जब मन करे वापस ले आना ताकि और बच्चे इन्हें पढ़ सकें।"

अगले दिन वह अपने पिता के साथ आया। वे सुस्ताएं इसके पहले ही उन्हें ज़बरदस्ती कमरों में खींचकर ले गया। कभी खुद के बनाए प्रदर्शित चित्र, मिट्टी के खिलौने एवं पुस्तकालय में रखी ढेर सारी किताबें दिखाता तो कभी बच्चों से मिलवाता। सुब्रत में आए यकायक बदलाव से उसके पिता स्वयं हैरान थे। कल तक यही सुब्रत स्कूल का नाम सुनकर चीख पुकार मचाने लगता था। बढ़िया-से-बढ़िया किताबें खरीदकर लाए, पर सुब्रत की नाराज़ी के कारण किताबों की सूरत बिगड़ गई।

उन्होंने बताया, "सुब्रत ने हमें कल देर रात तक जगाए रखा, बार-बार किताबों की कहानी सुनाने को कहता। जैसे ही एक किताब पूरी होती वह दूसरी हमारे हाथ में थमा देता था। उसकी जिद को मैं चाहते हुए भी दबा नहीं सका। रात को ही उसने मुझसे यह बात मनवा ली थी कि मैं उसका स्कूल देखने चलूंगा। सारा दिन जो भी यहां करता, सब कुछ सुनाता। हमारा ध्यान ज़रा इधर-उधर जाता तो तुनक कर बैठ जाता। सुबह से टिफिन जल्दी लगाओ की रट लगाए रहता। उसको यह चिंता बहुत थी कि कहीं तांगा न निकल जाए। मन में अद्भुत खुशी

इसलिए हो रही है कि इसकी मां ने इसके लिए एक जीवंत स्कूल तलाश कर ही लिया।

"उसकी स्मृति में कैसे सजीव चित्र उभरने लगे हैं, कितनी छोटी-छोटी बातें भी उसको याद आती हैं। अपने चारों ओर के संसार के बिंबों को ग्रहण करते हुए उसकी चेतना में कई अनोखे सवाल उठते हैं, जिन्हें सुनकर हम हैरान रह जाते हैं। अच्छा हुआ जो इसे ज़बरदस्ती किसी तामझाम वाले स्कूल में दाखिला नहीं दिलवाया वरना पढ़ना-लिखना इसक लिए नीरस और उबाऊ काम हो जाता, और शिक्षा इसके लिए पूरी तरह से अंकों की कसौटी पर परखा जाने वाला किताबी काम बनकर रह जाती।"

सुब्रत के पिता की सोच एवं विचारों को सुनकर मुझे ऐसा लगा कि वे भी वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था की जर्जर स्थिति से परेशान हैं। शिक्षा के उथलेपन से न सिर्फ नाराज़ हैं, बल्कि चिंतित भी हैं। एक लम्बे समय से महसूस होने वाली पीड़ा आज गुब्बार बनकर फूट पड़ी थी।

काश! हर बच्चे के अभिभावक इनकी तरह बाल मन की पीड़ा को महसूस कर रहे होते, तो शायद बच्चों की इच्छाओं, भावनाओं, आकांक्षाओं को इतना रौंदा नहीं जाता। इसलिए शैक्षिक तंत्र को ही पूरी तरह से दोषी ठहराना उचित नहीं होगा। इस भटकाव भरी अटपटी संरचना में अभिभावक समाज की भी उतनी ही हिस्सेदारी है, जितनी कि शैक्षिक तंत्र की।

सुब्रत की ही तरह एक और लड़की हमारे केन्द्र में आई जिसका नाम पूजा था। पूजा के सामने ज़रा भी ऊंची आवाज़ में बात करते तो वह घबराकर कांपने लगती थी। दोनों हाथों को सामने उठाकर एक ही वाक्य रो-रोकर बोलती थी, "सर, हमें मारियो नहीं।"

इस तरह की स्थितियों का गहराई से विश्लेषण करके देखा जाए तो कक्षा में पढ़ाई जाने वाली सामग्री से ज़्यादा बच्चों को शिक्षक के रवैये से घबराहट कहीं ज़्यादा होती है। पाठ्य सामग्री या उसको पढ़ाने के तरीके बहुत बाद की चीज़ें हैं। साथ-ही-साथ अभिभावकों को भी यह जानना चाहिए कि बच्चे स्कूलों से क्यों पीछा छुड़ाना चाहते हैं? जब अभिभावकों का दबाव बनेगा तो बहुत-सी चीज़ें अपने आप सुधरती जाएंगी। और शायद वर्तमान धुंध में शिक्षा को विलुप्त होने से बचाया जा सकेगा।

चंद्र प्रकाश कड़ा: एकलव्य के भोपाल स्थित स्रोत केन्द्र व बाल-साहित्य संदर्भ पुस्तकालय के साथ काम कर हैं।